International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: 3049-2017
IJMH 2026; 3(2): 203-206
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 13-03-2026
Accepted: 06-04-2026
Publish : 07-04-2026

Akanksha Dwivedi
Research Scholar,
Jamia Millia Islamia,
New Delhi

Correspondence:
Akanksha Dwivedi
Research Scholar,
Jamia Millia Islamia,
New Delhi

संस्कृत साहित्य को कवि आनन्दराय मखिन् का योगदान

आकांक्षा द्विवेदी

Abstract:

यह शोधपत्र संस्कृत साहित्य विशेषतः प्रतीकात्मक नाट्य परम्परा में कवि आनन्दराय मखिन के योगदान का अध्ययन प्रस्तुत करता है। संस्कृत नाट्यधारा में जहां प्रायः पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों का स्थान रहा है। वही आनन्दराय मखिन् ने प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से अमूर्त दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों को सजीव एवं सुलभ रूप में अभिव्यक्त किया है। इस अध्ययन में उनकी प्रमुख कृतियों- जीवानन्दनम एवं विद्यापरिणयनम् - का विश्लेषण किया गया है। जिससे यह प्रतिपादित होता है कि उन्होंने ज्ञान, भक्ति, अविद्या, रोग, बुद्धि आदि अमूर्त तत्त्वों को मानवीकृत कर जटिल दार्शनिक एवं आयुर्वैज्ञानिक अवधारणाओं को सरल एवं रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। शोधपत्र यह भी स्पष्ट करता है कि आनन्दराय मखिन् की रचनाओं में शिवभक्ति, जीवन- दर्शन की सूक्ष्मता तथा लोकमङ्गल की भावना प्रमुख रूप से परिलक्षित होती है। उन्होंने नाटक को केवल मनोरञ्जन का साधन न मानकर ज्ञान के प्रसार का प्रभावी माध्यम सिद्ध किया है।

Keywords: आनन्दराय मखिन्, संकृत साहित्य, प्रतीकात्मक नाटक, जीवानन्दनम्, विद्यापरिणयनम्, आयुर्वेद, शिवभक्ति, नाट्य परम्परा

संस्कृत साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है। इसमें ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला, अध्यात्म जैसे अनेक विषयों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, काव्य तथा नाटक- इन सभी विभिन्न विधाओं में सूक्ष्म अतिसूक्ष्म से लेकर सकल ब्रह्माण्ड के गोचर अथवा अगोचर सभी विषयों को आचार्यों ने अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुरूप जन सामान्य के लिए सुगम एवं सरल रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में 'नाट्यविधा' की मुख्य भूमिका है। नाटक को स्वयं मुनि भरत ने 'पञ्चमवेद'[1] की संज्ञा दी है। अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक ने जन सामान्य को अधिक आकृष्ट किया। संस्कृत नाटकों ने विचार, दर्शन, संस्कृति को रङ्गमञ्च पर मूर्त स्वरूप प्रदान किया है।

नाट्य परम्परा में अधिकतर प्रमुख रचनाओं का आधार ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाएं रही है। इन कथानकों से जहां एक ओर दर्शकों ने राम, राजा दिलीप, कृष्ण जैसे पात्रों से मानव जीवन मूल्यों को ग्रहण किया, वहीं दूसरी ओर दुर्योधन, दुशासन, रावण जैसे पात्रों से मनुष्य जीवन के लिए त्याज्य वस्तुओं की शिक्षा ली है। मनुष्य के लिए साहित्य मात्र पदों का विन्यास नहीं अपितु समग्र जीवन दर्शन का प्रतिबिम्ब रहा है।

इससे कुछ भिन्न संस्कृत साहित्य में 'प्रतीकात्मक नाटकों' की श्रृङ्खला मिलती है। प्रतीक नाटक में मुख्य रूप से अप्रत्यक्ष दार्शनिक तत्त्वों, भावनाओं आदि का प्रतीक के माध्यम से उद्घाटन किया जाता है। इसके पात्र मूर्त, अमूर्त अथवा कल्पित होते हैं। इन्हीं अमूर्त भावों को संवादों, घटनाओं के माध्यम से मानवीकृत करके दर्शक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यह कवि की प्रतिभा है कि वह पात्रों का वर्णन इस प्रकार करते हैं जैसे मानो वे सजीव ही हैं, उनमें भी आत्मा है, वे भी मूर्त ही हैं। विश्लेषण किया जाए तो नाटकों में मूर्त पात्रों का चित्रण, उनकी कथा, संघर्ष आदि का वर्णन फिर भी किञ्चित सरल है परन्तु प्रतीक नाटक में वर्णित अमूर्त तत्त्वों, भावनाओं का इतना सूक्ष्म वर्णन काव्य कौशल का उत्कृष्टतम उदाहरण है।

प्रतीक नाटक में अमूर्त तत्त्व जैसे भक्ति, श्रद्धा, विवेक, बुद्धि, क्षमा, ज्ञान, विज्ञान, रोग, कीर्ति, कर्म, काल आदि को मूर्त स्वरूप दिया जाता है। ऐसे गूढ़, दुर्लभ एवं जटिल विषयों को जन सामान्य के लिए सुगम और सरल ढङ्ग से प्रस्तुत करने के लिए प्रतीक नाटक का आश्रय लिया जाता है। यह तो आचार्य

जन स्वयं मानते हैं कि शास्त्रसम्मत उपदेश से अधिक प्रिय कान्तासम्मित उपदेश होता है। बस उसी का अनुकरण करते हुए प्रतीक नाटककारों ने दर्शन एवं ऐसे ही अन्य कठिन विषयों को रसपूर्ण प्रकार से सहृदयों तक पहुंचाने का प्रयास किया।

सर्वप्रथम अश्वघोष रचित प्रतीक नाटक जिसमें धृति, कृति और बुद्धि आपस में वार्तालाप कर रही हैं कि एक पृष्ठ की त्रुटित प्रति प्राप्त होती है। इसके पश्चात् कई वर्षों तक कोई प्रतीक नाटक उपलब्ध नहीं होता है। फिर ग्यारहवीं शाताब्दी में कृष्णमिश्र का प्रबोधचन्द्रोदय प्राप्त होता है। इनके पश्चात् प्रतीक नाटक की शैली में अनेक रचनाएं अत्यन्त सुलभ एवं सुचारु ढङ्ग से प्राप्त होती हैं।

प्रतीक नाटककारों की परम्परा में एक ऐसे ही कवि आनन्दराय मखिन ने भी अपना योगदान कर संस्कृत की सेवा की है। इनका जन्म दक्षिण भारत के तंजौर राज्य में हुआ था। गङ्गाधर इनके पितामह थे जो तंजौर के राजा ईकोजी प्रथम के मन्त्री थे। गङ्गाधर के 2 पुत्र हुए- नृसिंह आर्य और त्र्यम्बक आर्य। आनन्दराय मखिन नृसिंह आर्य के पुत्र थे। अपने पिता के पश्चात नृसिंह आर्य ने मन्त्री पद ग्रहण किया। आनन्दराय मखिन के बाल्यकाल में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। अतः उनका पालन पोषण उनके काक त्र्यम्बक आर्य ने किया[2]। त्र्यम्बक आर्य ईकोजी प्रथम और शाहजी के मन्त्री रहे। आनन्दराय मखिन की पत्नी जयन्ती थी तथा नृसिंह आर्य द्वितीय इनके पुत्र थे जो ईकोजी द्वितीय के काल में मन्त्री बने। अपने कुल का अनुकरण करते हुए आचार्य ने भी शाहजी के मन्त्री पद का कार्यभार सम्भाला। अग्रिम कुछ वर्षों में उन्होंने 'धर्माधिकरिन' का पद भी ग्रहण किया। वे 'वेदकवि' के नाम से भी सुसज्जित थे। इनका समय बलदेव उपाध्याय ने अट्ठारहवीं शती का प्रारम्भ स्वीकार किया है[3]।

कविवर आनन्दराय मखिन की 2 रचनाएं प्राप्त होती हैं- 'जीवानन्दनम्' तथा 'विद्यापरिणयनम्'। यह दोनों ही नाटक प्रतीकात्मक शैली में रचे गए हैं। अपने दोनों ही नाटकों के माध्यम से कवि ने स्वयं को शिव के अनन्य भक्त के रूप में प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम जीवानन्दनम् के विषय में सक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की जाएगी।

जीवानन्दनम् सात अङ्कों में रचित एक नाटक है। इसमें आयुर्वेद के सिद्धान्तों के साथ अद्वैत दर्शन के तत्त्वों का भी समावेश किया है कवि ने। इसमें कुल 347 पद्य है। इसमें निम्न अमूर्त तत्त्वों को मूर्त रूप में प्रस्तुत किया है- नाटक का नायक जीव, रानी बुद्धि, मन्त्री विज्ञान तथा ज्ञान शर्मा तथा प्रतिनायक एवं शत्रुपक्ष के राजा के रूप में राजयक्ष्मा, उसकी रानी विषूची, पुत्र तथा मन्त्री पाण्डु साथ में अन्य रोग उसकी सेना में नियुक्त हैं। नाटक का शुभारम्भ दो नान्दी श्लोकों से होता है जिसमें प्रथम श्लोक में भगवान धन्वन्तरी[4] तथा द्वितीय श्लोक में भगवान शिव और देवी पार्वती की स्तुति की गई है[5]। शत्रुपक्ष से लौटकर राजायक्ष्मा सहित उसकी सम्पूर्ण सेना की विस्तृत जानकारी गुप्तचरी धारणा मन्त्री विज्ञान शर्मा को देती है। जिसे सुनकर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि शत्रु को पराजित करने के लिए नायक तथा रानी बुद्धि को पुण्डरीकपुर में जाकर भगवान शिव और देवी पार्वती की उपासना करनी चाहिए। जिसके फलस्वरुप उन्हें रस तथा गन्धक की प्राप्ति हो सके। यह विमर्श सुनकर राजा अपनी रानी सहित प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार प्रथम अङ्क समाप्त होता है।

इसके पश्चात् द्वितीय अङ्क का आरम्भ कास जो कि राजयक्ष्मा का परिचारक है तथा उसकी पत्नी छर्दी के वार्तालाप से होता है। इस संवाद से यह ज्ञात होता है कि पाण्डु को जीव और बुद्धि का रस तथा गन्धक की प्राप्ति हेतु पुण्डरीकपुर में जाना ज्ञात है। इस उपलक्ष्य में वह अपनी सेना के सेनापति तेरह सन्निपातों को बुलाता है। सन्निपात अन्य रोगों जैसे कुष्ठ, उन्माद, व्रण, प्रमेह, अतिसार, गुल्म आदि की सहायता से पाण्डु का विश्वास प्रबल करते हैं विजय उनकी ही होगी[6]।

अस्माद्दृशेषु बलशालिषु सैनिकेषु
राजन्नलं प्रभुपराभवचिन्तया ते।
स्यात्किं वसन्तदिवसेषु विसृत्वरेषु
पद्माकरस्य तुहिनाभिभवप्रसक्तिः॥

वे पूर्ण रूप से युद्ध के लिए तैयार है। इसके साथ ही कर्णमूल जो राजयक्ष्मा का गुप्तचर यह सन्देश देता है कि राजा जीव भगवान शिव की उपासना में लीन है तथा एकाग्र चित्त से उनका ध्यान कर रहा है। इस सन्देश को सुनने के उपरान्त पाण्डु यह घोषणा करता है कि जीव का ध्यान अनियमित आहार एवं मनुष्य के जन्मजात छः शत्रुओं से विचलित किया जा सकता है[7]।

यश्चञ्चलं प्रकृत्या विषयेषु मनो निसर्गदुर्दान्तम्।
तत्कामादिभिरेतैर्भेदयितुं शक्यते शनकैः॥

इसी के साथ यह अङ्क भी समाप्त होता है।

तृतीय अङ्क में राजा जीव रानी बुद्धि के साथ पुण्डरीकपुर से लौटते हैं। अपने पुनः आगमन पश्चात् मन्त्री से वार्तालाप करते हुए वे उसे रस तथा गन्धक की सफलता पूर्वक प्राप्ति से अवगत करता हैं[8]।

.....तया प्रसन्नौ भगवन्तौ संप्रत्यनिलषितान् रसगन्धकादोन्प्रसादी-कृत्यार्पितवन्तौ।...

जिसे सुनकर मन्त्री कहता है कि वह उनका प्रयोग करके औषधियों कर निर्माण करेगा। यहां तृतीय अङ्क समाप्त होता है।

चतुर्थ अङ्क का आरम्भ विदूषक के मञ्च पर प्रवेश करने के साथ होता है जिसके एकालाप से यह ज्ञात होता है कि नायक पक्ष को रस और गन्धक की प्राप्ति हो चुकी है और शत्रु पक्ष इससे भली प्रकार से अवगत हैं। मन्त्री विज्ञान शर्मा जीव की भेंट उनसे मिलने आये अन्य राजाओं से कराते हैं। यहां राजाओं को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत न कर उन्हें मन्त्री के संवाद द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अपने नित्य कर्म करने के पश्चात् राजा जब भगवान शिव की अराधना करने के लिए जाता है तब शिवभक्ति को विस्मृत करने का दुःख प्रकट करता है। जिसे देख स्मृति शिवभक्ति और श्रद्धा के साथ मञ्च पर प्रवेश करती है[9]।

.....इति पुण्डरीकपुरं गत्वा तत्र श्रद्धया सेव्यमानां भगवतीं दृष्ट्वा श्रद्धामुखेन तथा संविधानं कृत्वा आगतास्मि।

शिवभक्ति राजा की व्यथा देख उसे आश्वासन देती हैं कि जब राजा समस्त रोगों से उमीलित होकर विजय प्राप्त कर लेंगे तब वे नित्य आनन्द हेतु उनका मार्ग प्रशस्त करेंगी[10]।

निर्जितनिखिलविपक्षं नीरुजपुरस्तुस्थमपगतातङ्कम्।
अहमागत्य विधास्ये परमानन्दाब्धिमाप्तकामं त्वाम्॥

इसी अङ्क में मन्त्री ऋतुचर्या का भी विस्तृत वर्णन राजा के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

पञ्चम अङ्क में मत्सर के मञ्च पर प्रवेश और एकालाप से यह स्पष्ट होता है कि जीव का विनाश करने के लिए छः शत्रु- काम, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ तथा मत्सर भेजे गए हैं। इन सब में मत्सर के अतिरिक्त सभी का विनाश कर दिया गया है। इस पर पाण्डु अपथ्यता को जीव के पुर में प्रवेश कर उसे विचलित करने का आदेश देता है[11]।

पाण्डुः – (अपथ्यतां प्रति अपवार्य) अयि त्वं कचिन्महति राजकार्ये नियोजयितव्यासि।

अपथ्यता– अवहितास्मि

पाण्डुः – जीवं प्रविश्य तमपथ्येष्वाहार विहारादिषु नियोजय।

राजयक्ष्मा मत्सर के साथ पाण्डु से मिलने जाता है। जहां मत्सर वर्णन करता है कि जीव का पुर भली प्रकार से पञ्च वायु से सुरक्षित है। किञ्चित भी प्रतिकूल स्थिति का निवारण करने लिए रसों, औषधियों की सहायता ली जाती है। इस वृत्तान्त को सुनने के पश्चात पाण्डु जीव को पराजित करने के लिए नवीन उपायों को गुप्त रूप से यक्ष्मा के कान में कहता है। इस अङ्क का यहां समापन होता है।

षष्ठ अङ्क में जीव की सेना और शत्रु सेना के मध्य युद्ध का वर्णन किया है नाटककार ने। यह नाटक का सबसे दीर्घ अङ्क है। काल और कर्म इस युद्ध का आकाश में रहकर अवलोकन करते हैं तथा इसके साक्षी बनते हैं। युद्ध का आरम्भ 'भस्मक' नामक रोग के जीव पर आक्रमण करने से होता है जिसके कारण जीव को अत्यधिक भोजन के प्रति लालसा होती है। जो राजा के कष्टों का प्रवेश द्वार है। कुछ क्षण के लिए जब विज्ञान शर्मा राजा से अलग होते हैं

तब मन्त्री ज्ञान शर्मा राजा के समीप जा कर उन्हें स्मरण कराते हैं कि यह भौतिक शरीर नश्वर है, आत्मा शाश्वत है और यही ब्रह्म है[12]।

शश्वन्नश्वरमेव विश्वविदितं पापप्ररोहस्थलं
मेदोमज्जवसास्थिमांसरुधिरत्वग्रोमरूपं वपुः।
एतस्मिन्मलमूत्रभाण्डकुहरे हेये मनोषावतां
दुःखे न्यायविदो विमोहमिह के तन्वन्ति नन्वन्तिमे॥

यहां दोनों ज्ञान शर्मा और विज्ञान शर्मा जीव के हितकारी होने पर भी आपस में मतभेद रखते हैं। इस अद्वैत तत्त्व का विस्तृत वर्णन किया है नाटककार ने। विज्ञान शर्मा पुनः जीव से मिलने के पश्चात् उसके मन में होने वाले द्वन्द्व को युद्ध की स्थिति दिखा कर शान्त करते हैं। वह उसे बताते राजयक्ष्मा के सैनिकों का अर्थात रोगों का रस तथा गन्धक से निर्मित औषधियों से शमन कर दिया गया है। इधर राजयक्ष्मा और उसकी पत्नी विषूचि अपने मृत पुत्रों को देखकर अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हैं और विलाप करते हैं। शत्रु मन्त्री पाण्डु अपने माता पिता की यह स्थिति देख जीव का सम्पूर्ण नाश करने का प्रण करता है। जिसके साथ यह अङ्क समाप्त होता है।

सप्तम और अन्तिम अङ्क में विज्ञान शर्मा को आशङ्का होती है कि राजयक्ष्मा के अभी भी कुछ अजेय सैनिक बचे हैं। इसकी जानकारी वह जीव को देता है और उसे यह उपदेश देता है कि वह सम्पूर्ण निष्ठा के साथ भगवान शिव का ध्यान करे जिनकी अनुकम्पा से ही इन अजेय शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है[13]।

भक्तायमया कदाचिद् भवते दर्शिष्यते साम्बः।
इतिभगवत्या मह्यं जातुचिदावेदितं भक्तया॥

इस वचन को सुनने के पश्चात् राजा भगवान शिव का ध्यान और स्मरण करता है[14]।

राजा – यद्येवमनुध्याय विध्वादिविबुधकृतनिषेवणं करोमि मनसा शरणं शंकरम्।

भगवान शिव अपने समस्त परिवार सहित जीव को दर्शन देते हैं तथा उसे योग विद्या का ज्ञान देते हैं[15]।

भगवान्– वत्स जीव, योगसिद्धिमुपदिशामि ते।

इस ज्ञान के आलोक में उसे चतुर्वर्ग- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है[16]।

ईशानस्य निदेशात्प्राप्ता साप्यत्र शांकरी भक्ति।
चत्वारोऽपि पुमर्थाः पुंभियस्याः प्रसादतो लभ्याः॥

भरतवाक्य से नाटक का अन्त किया जाता है।

विद्यापरिणयनम भी प्रतीकात्मक शैली में लिखा हुआ नाटक है आचार्य का। यह सात अङ्कों में विभक्त है। नाटक का आरम्भ संस्कृत परम्परा का अनुसरण करते हुए नाटककर ने नान्दी से किया है जिसमें भगवान शिव से अद्वैत तत्त्व कि प्राप्ति हेतु प्रार्थना कि गई है। जीव अविद्या के मोह में है। शिवभक्ति अपनी सहचर्या निवृत्ति के साथ मिलकर उसे अविद्या के प्रति विरक्त करने का उपाय करती है। इसमें चित्तशर्मा उनकी सहायता करता है। जो सर्वप्रथम जीव के मन में अविद्या के प्रति प्रतिकूल भाव उत्पन्न करता है। इधर असूया, प्रवृत्ति आदि को यह ज्ञात होता है कि जीव को विद्या की ओर उन्मुख किया जा रहा है। विषयवासना के साथ मिलकर अविद्या जीव को पुनः सांसारिक भोगों की ओर आकृष्ट करके प्रयासों को विफल करने का प्रयत्न करती है। वह चित्तशर्मा पर भी अपना नियन्त्रण स्थापित करना चाहती है। सर्वप्रथम जीव को विद्या का चित्र निवृत्ति दिखाती है। जिससे उसके मन में विद्या के प्रति आकर्षण का बीजारोपण होता है। अविद्या को यह रास नहीं आता अतः वह जीव को अपने पक्ष में लाने का प्रयास करती है। इस कार्य में विषयवासना उसका साथ देती है किन्तु चित्तशर्मा यह प्रयास सफल नहीं होने देता। विद्या से सफल मिलन के लिए जीव को वेदारण्य (आध्यात्मिक क्षेत्र) जाना चाहिए यह जानने के पश्चात् वह छलपूर्वक अविद्या के साथ जीव को भेजना की योजना बनाते हैं। अविद्या इसका अनुमान लगने पर अनेक प्रकार के नास्तिक मतों तथा पाखण्डी विचारों का जीव को सन्मार्ग से

विचलित करने के लिए प्रेषण करती है। तत्त्वविचार इनका खण्डन कर जीव को सन्मार्ग पर अग्रसर करता है। अपने प्रयासों को विफल होता देख अविद्या एक बार पुनः जीव का ध्यान अपनी ओर करने के लिए मनुष्य के छः जन्मजात शत्रुओं की सहायता लेती है। शिवभक्ति अपने प्रभाव से जीव को विद्या का दर्शन कराती है। इस दर्शन से जीव विद्या की ओर अग्रसर होता है। विद्या से अत्यन्त प्रभावित होकर भी उसे प्राप्त न कर पाना जीव को विचलित कर देता है। जीव योग और साधना की शिक्षा तपस्वीजन से प्राप्त करता है। इस शिक्षा के उपरान्त जीव की आत्मशुद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। अन्त में जीव का विद्या से मिलन पूर्ण होता है और उनका विवाह सम्पन्न होता है। यह ज्ञान का प्रतीक है। इस प्रकार यह नाटक समाप्त होता है।

निष्कर्तः यह स्पष्ट होता है कि कवि आनन्दराय मखिन् का संस्कृत साहित्य में योगदान अत्यन्त विशिष्ट है। उन्होंने प्रतीकात्मक नाट्य परम्परा को न केवल समृद्ध किया है अपितु उसे दार्शनिक, आयुर्वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक गाम्भीर्य से भी अनुप्राणित किया है। जीवानन्दनम् एवं विद्यापरिणयनम् जैसे नाटकों के माध्यम से उन्होंने अमूर्त तत्त्वों- जैसे ज्ञान, भक्ति, अविद्या, रोग, बुद्धि आदि- को मूर्त रूप देकर जटिल विषयों को सहज एवं सरस रूप में प्रस्तुत किया है। विशेषतः जीवानन्दनम् में आयुर्वेद और अद्वैत दर्शन का समन्वय उनकी मौलिकता और गहन अध्ययन का परिचारक है।

उनकी रचनाओं में शिवभक्ति की प्रधानता, जीवन दर्शन की सूक्ष्म दृष्टि तथा लोकहित की भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि नाटक केवल मनोरञ्जन का साधन नहीं बल्कि ज्ञान, नैतिकता और आध्यात्मिकता के प्रसार का प्रभावी माध्यम भी है। इस प्रकार आनन्दराय मखिन् की संस्कृत के उन उत्कृष्ट नाटककारों में गणना की जाती है जिन्होंने परम्परा का अनुसरण करते हुए उसमें नवीनता का समावेश किया। साथ ही साहित्य को एक उच्चतर उद्देश्य से जोड़ा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 नाट्यशास्त्रम् – भरतमुनि, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 5वां संस्करण, 2016

2 जीवानन्दनम्, आनन्दराय मखिन्

3 विद्यापरिणयनम्, आनन्दराय मखिन्

पाद टिप्पणी:

[1]नाट्यशास्त्र 1.15cd: नाट्याख्यं पञ्चम वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥

[2]जीवानन्दनम् 1.10: अबाल्यादपि पोषितोऽजनि मया प्रेम्ण तथा लालित...

[3]संस्कृत साहित्य का इतिहास

[4]लक्ष्मीकैरवबन्धुकल्पकतरून् लब्ध्वाप्यलब्धेप्सितं भूयो मथ्नति देवदानवगणे दुग्धाब्धिमुद्धश्रमे।
तस्यानन्दथुना समं समुदयन् कुम्भं सुधापूरितं बिभ्राणः स्वकरे करोतु भवतां भद्राणि धन्वन्तरि॥

[5]प्राग्जन्मीयतपः फलं तनुभृता प्राप्येत मानुष्यकं तञ्च प्राप्तवता किमन्यदुचितं त्रिवर्गं विना।
तत्प्राप्तेरपि साधनं प्रथमतो देहो रुजावर्जितस्तेनारोग्यमभीप्सितं दिशतु वो देवः पशूनां पतिः॥

[6]जीवानन्दनम् 2.12

[7]जीवानन्दनम् 2.39

[8]जीवानन्दनम् 3.21/22

[9]जीवानन्दनम् 4.16/17

[10]जीवानन्दनम् 4.24

[11]जीवानन्दनम् 5.25/26

[12]जीवानन्दनम् 6.13

[13]जीवानन्दनम् 7.7

[14]जीवानन्दनम् 7.7/7.8

[15]जीवानन्दनम् 7.23/24

[16] जीवानन्दनम् 7.31